**ओ३म्**

**‘महर्षि दयानन्द ने समाज सुधार का कार्य क्यों चुना?’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

महर्षि दयानन्द का व्यक्तित्व सर्वांगीण था। वह मनुष्योचित सभी गुणों से सम्पन्न आदर्श महापुरूष थे। उन्होंने परतन्त्र व अज्ञानग्रस्त भारत में समाज सुधार का अविस्मरणीय एवं अपूर्व कार्य किया है। उन पर अध्ययन करते हुए हमारे मन में यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि उनके समाज सुधार कार्यों में प्रवृत्त होने के पीछे मुख्य कारण क्या थे? इस पर विचार करने पर हमें यह ज्ञात होता है कि उनमें अपने पूर्व जन्म के संस्कारों के कारण सत्य को जानने तथा सत्य को जानकर उसे अपने जीवन में पूर्णतया पालन करने की तीव्र भावना विद्यमान थी। सत्य की खोज में ही वह अपनी युवावस्था में अपने परिवार का त्याग कर घर से भागे और उन दिनों शिक्षा व ज्ञान प्राप्ति के साधक साधु सन्यासियों की संगति में पहुंचे। उनके हृदय में जो आशंकायें व प्रश्न थे, उनके उत्तर देश के किसी अंग्रेजी व संस्कृत विद्यालय के आचार्यों के पास नहीं थे। अतः उन्होंने एक-एक कर विद्वान साधु संन्यासियों की खोज की और उनके सामने अपनी जिज्ञासायें रखकर उनके समाधान पूछें। वह जान गये थे कि सारा आध्यात्मिक, लौकिक ज्ञान व विज्ञान संस्कृत भाषा में ही विद्यमान है। अतः उन्होंने संस्कृत का अध्ययन किया और इसके लिए यत्र-तत्र भ्रमण करते हुए उन्हें कहीं से यदि कोई ग्रन्थ मिल जाता था तो उसे वह एक जिज्ञासु की भांति सर्वांगपूर्ण रूप से देखते थे। समय व आयु बढ़ने के साथ उन्होंने बड़ी संख्या में अनेक ग्रन्थों का अध्ययन कर डाला परन्तु उनकी तृप्ति न हो सकी थी। उन्हें ऐसे गुरू की तलाश थी जो उनकी सभी जिज्ञासाओं और शंकाओं को दूर कर दें। यही कारण था कि वह अपने सम्पर्क में आने वाले विद्वान साधु संन्यासियों से किसी योग्य ज्ञानी शिक्षक का पता पूछते रहते थे जो उनकी समस्त शंकाओं का निवारण कर सके। उनकों अपने एक वयोवृद्ध गुरू स्वामी पूर्णानन्द जी से पता चला था कि मथुरा में प्रज्ञाचक्षु दण्डी स्वामी विरजानन्द सरस्वती एक पाठशाला चलाते हैं। वह आर्ष वैदिक वांग्मय के उच्चकोटि के विद्वान पण्डित हैं। वह स्वामी दयानन्द जी की सभी जिज्ञासाओं को दूर कर सकते हैं। अतः स्वामीजी ने गुरू विरजानन्द का अन्तेवासी शिष्य बनने का विचार किया और सन् 1860 ईस्वी में, जबकि उनकी अवस्था 35 वर्ष थी, अध्ययन हेतु गुरू विरजानन्द जी की कुटिया मथुरा में जा पहुंचें।

स्वामी विरजानन्द जी से आपने अध्ययन आरम्भ किया और लगभग 3 वर्ष में पूरा किया। यहां आपने आर्ष संस्कृत व्याकरण के ग्रन्थों सहित वैदिक साहित्य के सिद्धान्तों व मान्यताओं को भी भलीभांति जाना। इसके साथ अवैदिक ग्रन्थों में विषसम्पृक्त अन्न की भांति अनेक दोष व सत्य के विपरीत मान्यतओं व सिद्धान्तों के विद्यमान होने की दृष्टि भी आपको मिली। मूर्तिपूजा, अवतारवाद, फलितज्योतिष, बालविवाह, जन्मना जातिवाद एवं वेदाध्ययन में स्त्री व शूद्रों सहित मानव मात्र का अधिकार आदि अनेक विषयों पर सत्य व दृष्टि प्राप्त हुई। विद्या पूरी होने पर गुरू विरजानन्द ने स्वामी दयानन्द जी का पात्रता का अनुभव कर उनसे अपने निजी विचारों को प्रकट किया। उन्होंने कहा कि इस समय सारा आर्यावत्र्त अविद्या, अज्ञान, अन्धविश्वास, कुरीतियों, कुप्रथाओं, सामाजिक विषमताओं, ब्रह्मचर्य के महत्व से अनभिज्ञ, परतन्त्र, चारित्रिक पतन आदि बुराईयों से ग्रसित है। प्रत्येक विद्वान मनुष्य का कर्तव्य है कि वह जितना कर सके, उसे अज्ञानता व इन बुराईयों को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये। वैदिक धर्म का यह मुख्य उद्देश्य भी है कि वह अविद्या का नाश व विद्या की वृद्धि करे, असहायों की सहायता करे, दीन-दुखियों की सेवा व मार्गदर्शन करे, देश की स्वतन्त्रता, उन्नति के लिए कार्य करे तथा सामाजिक विषमता व कुरीतियों को दूर कर वैदिक मत के अनुसार समाज का सुधार करे। स्वामी विरजानन्द जी ने दयानन्द जी के सम्मुख अपनी विवशता भी प्रकट की होगी वा स्वामी जी पहले से जानते थे कि प्रज्ञाचक्षु अर्थात् नेत्रान्ध होने के कारण वह चाहकर भी समाज सुधार व देशोद्धार का कार्य जितना वह कर सकते थे, नहीं कर पाये थे। उन्होंने स्वामी दयानन्द को समाज सुधार व देशाद्धार सहित अज्ञान व अविद्या को दूर करने के लिए वेदों के प्रचार व प्रसार की सलाह दी और पूछा कि क्या वह इस कार्य को करने के लिए उद्यत हैं। स्वामी जी प्रखर मेधा-बुद्धि के धनी थे। उन्हें निर्णय करने में देर नहीं लगी। उन्होंने विचार किया और उन्हें लगा होगा कि यह प्रस्ताव ही वस्तुतः उनके जीवन का उद्देश्य बन सकता था। उनका जो स्वभाव व जीवन था, उसमें भोगों व सुखों से पूर्ण जीवन जीने का कभी कोई चिन्ह देखने को नहीं मिला था। वह तो पहले से ही मोक्ष प्राप्ति के पथिक थे। उन्होंने निर्णय कर लिया कि सारा जीवन गुरू जी आज्ञा व प्रेरणा के पालन में लगायेंगे। गुरूजी को उन्होंने अपने निर्णय से अवगत करा दिया। हमें लगता है कि गुरू जी स्वामी दयानन्द जी के निर्णय को सुनकर गदगद हो गये होंगे और दयानन्द जी के प्रति अत्यन्त स्नेह वश उनकी अविरल अश्रुधारा प्रवाहित हुई होगी। ऐसी प्रेरणा इतिहास में कभी किसी गुरू ने अपने किसी शिष्य को नहीं दी थी। ऐसा भी कोई शिष्य इतिहास में नहीं दिखता जिसने अपने गुरू की इच्छा व आज्ञा का पालन अपना सारा देकर किया हो जैसा कि महर्षि दयानन्द जी ने किया था। इस गुरू दक्षिणा के बाद स्वामी जी ने मथुरा से आगरा आकर वहां धर्म प्रचार आरम्भ कर दिया और साथ हि साथ वह भविष्य के कार्यों की योजना भी बनाने लगे।

उन्होंने जो योजना बनाई उसे हम उनके 1863 से 30 अक्तूबर, 1883 तक मृत्यु पर्यन्त के कार्यों में परिलक्षित पाते हैं। पहला कार्य तो उन्होंने मौखिक उपदेश व प्रवचन के कार्यों को समाज सुधार का साधन बनाया। इसके लिए उन्होंने धार्मिक स्थान काशी, हरिद्वार आदि धार्मिक स्थानों सहित देश के प्रसिद्ध नगरों व देशी राजाओं व उनकी रियासतों को चुना। उनके सत्य धर्म प्रचार से जागृति उत्पन्न होने लगी। छोटे-बड़े, राज्याधिकारी व अन्य सभी प्रकार के धर्म पिपासु लोग उनके उपदेशों का श्रवण करने आने लगे। आगरा में प्रचार के दौरान उन्होंने सन्ध्योपासना पर एक पुस्तक लिखकर उसे हजारों की संख्या में वितरीत किया, वहीं एक लघु ग्रन्थ भागवत खण्डन लिख कर उसे भी प्रचारित व प्रसारित किया। उन दिनों काशी पौराणिक विद्वानों की नगरी थी। वहां मूर्तिपूजा के लिए काशी विश्वनाथ का प्रसिद्ध मन्दिर था। और भी शतशः मन्दिर वहां थे जहां मूर्तिपूजा, अवतारवाद, फलित ज्योतिष, ऊंच-नीच, सामाजिक भेद-भाव-असमानता-विषमता थी और स्त्री व शूद्रों के लिए धर्म उपदेश व वेदाध्ययन के द्वार बन्द थे। हिन्दू धर्मच्युत होते थे परन्तु उनकी शुद्धि व घरवापिसी का कोई प्रबन्ध नहीं था। हिन्दू घट रहे थे तो अन्य मतावलम्बियों की संख्या बढ़ रही थी। वहां पहुंच कर महर्षि दयानन्द ने अज्ञान, पाखण्ड व अन्धविश्वासों को समाप्त करने के लिए मौखिक प्रचार शुरू किया। सारे काशी में हलचल मच गई। वह जो बोलते व कहते थे वह शास्त्रों के प्रमाणों से बोलते थे। कुछ अप्रमाण नहीं कहते थे। काशी के पण्डित तो वेदों से सर्वथा दूर थे। यह भी भ्रान्ति थी कि वेदों को तो भस्मासुर पाताल ले गया है। काशी ही नहीं देश के पण्डितों में ऐसा एक भी विद्वान नहीं था जिसने वेदों को देखा भी हो, पढ़ने की बात तो बहुत दूर थी। काशी में अन्धविश्वास व पाखण्ड समाप्त करने के उद्देश्य से महर्षि दयानन्द ने विज्ञापन प्रसारित कर काशी के पण्डितों को मूर्तिपूजा को वेद सम्मत सिद्ध करने की चुनौती दी। इस चुनौती को टालने के सभी उपाय किये गये परन्तु अधिक समय तक टाल नहीं सके। स्वामीजी के प्रचार से सारी जनता प्रभावित होकर उनके प्रति सम्मान व श्रद्धा व्यक्त कर रही थी जिसे पौराणिक पण्डित पचा नहीं पा रहे थे। सभी पण्डित काशी नरेश ईश्वरीनारायण सिंह से सुख सुविधायें पाते थे। उन्होंने पण्डितों पर शास्त्रार्थ करने का दबाव बनाया। विवश होकर पण्डितों को शास्त्रार्थ करने के लिए सामने आना पड़ा। 16 नवम्बर, 1869 को दुर्गाकुण्ड स्थित आनन्द बाग में विश्व का यह अपूर्व शास्त्रार्थ होना तय हुआ। यह पहले से ही आशंका थी कि काशी के पण्डितों में वेदों का ज्ञान तो है नहीं, अतः वह वितण्डा और हिंसा का सहारा लेंगे। ऐसा ही हुआ। महर्षि दयानन्द ने काशी के पण्डितों के प्रश्नों के युक्ति युक्त उत्तर दिये परन्तु महर्षि के पूछे प्रश्नों का वह उत्तर न दे सके। उन्होंने हार से बचने के लिए वितण्डा किया और शास्त्रार्थ को अधूरा छोड़ कर भाग खड़े हुए। राजा भी पण्डितों की कमजोरी जानते थे। उन्होंने भी उनका साथ दिया जो कि न्यायाधीश के शासन पर विराजमान व्यक्ति के लिए अनुचित था। बाद में उन्होंने इसके लिए क्षमायाचना भी की। इस शास्त्रार्थ का पूर्ण निष्पक्ष विवरण लिखकर महर्षि दयानन्द ने अपने शिष्यों के माध्यम से उन दिनों की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित करा दिया। शास्त्रार्थ में उपस्थित विद्वानों, दर्शकों व श्रोताओं सहित वहां उपस्थित पण्डितों पर भी महर्षि दयानन्द की विजय अंकित हो गई जो उन्होंने कालान्तर में अपने शिष्यानुशिष्यों व अन्य पण्डितों के सम्मुख स्वीकार भी की। इस कार्य ने महर्षि दयानन्द को बल वा शक्ति प्रदान की और वह वेदों के प्रचार में पूर्व की तरह सक्रिय रहे। महाभारत काल के बाद इतिहास में पहली बार धर्म की नगरी काशी में मूर्तिपूजा एवं इसके अनुयायियों व प्रवतर्कों की सभी धार्मिक अन्धविश्वासपूर्ण क्रियाओं व कर्मकाण्डों का असत्य व निर्मूलता देश व समाज के सम्मुख आ गई परन्तु उन मूर्तिपूजा के समर्थक मिथ्याचारियों का स्वार्थ, अज्ञान व सुख सुविधायें वेदों की सत्य मान्यताओं को स्वीकार करने में बाधा बनी रहीं और आज भी न्यूनाधिक वही स्थिति है।

काशी में ही मई, 1874 के महीने में प्रचार करते हुए स्वामी दयानन्द को अपने एक भक्त डिप्टी कलेक्टर राजा जयकृष्ण दास, सीएसआई से अपनी वैदिक मान्यताओं का एक ग्रन्थ लिखने की प्रेरणा प्राप्त हुई जिससे उन लोगों को जो किसी कारण उनके उपदेशों में सम्मिलित नहीं हो सकते थे वह व अन्य लाभान्वित हो सकें। इसके साथ उनके संसार के जाने के बाद भी वह ग्रन्थ देश भर में वैदिक धर्म के प्रचार का मार्गदर्शक व आधार बन सके, ऐसा आग्रह उनसे किया गया। महर्षि दयानन्द इस कार्य की महत्ता को तुरन्त समझ गये और उन्होंने इस स्वर्णिम प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और लगभग साढ़े तीन महीने में **‘सत्यार्थप्रकाश’** नाम से एक ग्रन्थ का लेखन व सम्पादन किया जो उनके वैदिक समस्त विचारों का प्रतिनिधि ग्रन्थ है। कालान्तर में उन्होंने वेद भाष्य का कार्य भी आरम्भ किया और चारों वेदों की भूमिका के रूप में **‘ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका’** ग्रन्थ सहित ऋग्वेद (मण्डल 7 सूक्त 61 मन्त्र 2 तक) तथा सम्पूर्ण यजुर्वेद का सरल संस्कृत व आर्यभाषा हिन्दी में भाष्य किया। समय समय पर उन्होंने संस्कार विधि, आर्याभिविनय, व्यवहारभानु, गोकरूणानिधि सहित खण्डन व मण्डन तथा शंकाओं व आलोचनाओं के निराकरण सहित कुछ लघु ग्रन्थ तथा वेदांगप्रकाश नाम से लगभग 24 छोटे बड़े ग्रन्थों का संसार के इतिहास में प्रथम बार आर्यभाषा हिन्दी में प्रणयन किया। इससे पूर्व धर्म-कर्म में संस्कृत का ही एकमात्र प्रयोग होता था। महर्षि दयानन्द ने जनसामान्य को धर्म का मर्म समझाने के लिए हिन्दी को अपने उपदेशों व ग्रन्थों की भाषा व माध्यम के लिए चुना। यह इतिहास की प्रथम घटना है जब साधारण से साधारण मनुष्य व दलित वर्ग के भाई भी ईश्वरोपासनार्थ सन्ध्या व हवन करते हुए वेदमन्त्रों का उच्चारण करते थे और इसके सत्य अर्थों से पूरी तरह से परिचित होते थे। उनमें वेदों पर प्रवचन करने की योग्यता भी होती थी। ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था। इसके साथ महर्षि दयानन्द सत्य वेद धर्म के प्रचारार्थ व संवर्धनार्थ देश भर में भ्रमणकर वेदोपदेश से लोगों के धर्मविषयक अज्ञान तिमिर का नाश भी कर रहे थे। अनेक देशी राजाओं की रियासतों में जाकर भी उन्होंने वेदों का प्रचार किया। 10 अप्रैल, 1875 को उन्होंने मुम्बई के काकड़वाड़ी क्षेत्र के गिरिगांव मोहल्ले में आर्य समाज की स्थापना की थी। यह आर्यसमाज उनके समाज सुधारार्थ वेदान्दोलन को क्रियान्वित करने का प्रतिनिधि संगठन था। उनके सभी कार्यों पर दृष्टि डालने पर समाज सुधार हेतु किए गए कार्यों में आर्यसमाज की स्थापना और ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका व वेदभाष्य सहित सत्यार्थप्रकाश की रचना प्रमुख कार्य हैं। सन् 1883 में स्वामीजी की मृत्यु के बाद वैदिक विद्वान पं. आर्यमुनि, स्वामी ब्रह्मुनि परिव्राजक, पं. तुलसीराम स्वामी, पं. शिवशंकर शर्मा काव्यतीर्थ, पं. जयदेव विद्यालंकार, पं. हरिशरण सिद्धान्तालंकार, स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती, पं. क्षेमकरण दास त्रिवेदी, पं. विश्वनाथ विद्यालंकार, दामोदर सातवलेकर, डा. रामनाथ वेदालंकार तथा स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती द्वारा वेदों के भाष्यों के प्रणयन का कार्य हुआ जिसका समस्त श्रेय महर्षि दयानन्द को है। इससे पूर्व ऐसा कार्य भारत व विश्व के इतिहास में नहीं हुआ था। इसके अतिरिक्त महर्षि दयानन्द के अनुयायी अनेक वैदिक विद्वानों ने दर्शन, उपनिषद, मुनस्मृति सहित अनेकानेक विषयों पर मौलिक शास्त्रीय ग्रन्थ लिखकर भी वैदिक साहिय को समृद्ध किया है। इसके कारण वह देश व इतिहास में सदा सदा के लिए अमर हो गये।

महर्षि दयानन्द ने समाज सुधार का कार्य वेदविहित ईश्वराज्ञा एवं अपने गुरू प्रज्ञाचक्षु स्वामी विरजानन्द सरस्वती की प्रेरणा तथा स्वकर्तव्य के कारण किया। ईश्वर ने सृष्टि के आरम्भ में लोगों को अज्ञान से बचाने के लिए वेदों का ज्ञान दिया था और यह अपेक्षा की थी वह ऋषि स्वयं वेदों का प्रचार करते हुए ऐसी परम्परा स्थापित करें जिससे सृष्टि के अन्त तक वेदों का प्रचार होता रहे तथा जिससे अज्ञान व अज्ञानमूलक मत-मतान्तर-पन्थ-सम्प्रदाय-मजहब-धर्म आदि न पनप सकें। वेदों अर्थात् सत्य ज्ञान का प्रचार व प्रसार ही मनुष्य का परम धर्म है। इसके लिए महर्षि दयानन्द ने आर्यसमाज के तीसरे नियम में कहा है कि **‘वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेदों का पढ़ना-पढ़ाना व सुनना-सुनाना सब आर्यों-मनुष्यों का परम धर्म है।’** यह मनुष्यों का कर्तव्य व परम धर्म होने के साथ समाज सुधार व देश के सशक्तीकरण का भी मूल मन्त्र है जिसे महर्षि दयानन्द ने गुरू की प्रेरणा से प्राप्त किया और उसे पकड़ कर उसका अपूर्व रीति से प्रचार व निर्वाह कर देश से अज्ञान के अन्धकार, अन्धविश्वासों, कुरीतियों व पाखण्डों सहित समस्त सामाजिक असमानताओं को मिटाकर सबको न्याय प्रदान किया व कराया। यह खेद है कि आजकल के विश्वविद्यालयों में पढ़े व शिक्षित बन्धु समाज सुधार, अविद्या का नाश व विद्या की वृद्धि सहित सत्य के ग्रहण व असत्य के त्याग को अपने जीवन क लक्ष्य नहीं बना सके जिसका कारण देश व समाज का आज भी अज्ञान व अन्धविश्वासों में फंसा होना है। यदि महर्षि दयानन्द समाज सुधार के लिए वेदों का प्रचार प्रसार, ग्रन्थ लेखन, देश भ्रमण कर वेदोपदेश, शास्त्रार्थ व लोगों का पथप्रदर्शन न करते तो आज का भारत इतना भौतिक विद्याओं से शिक्षित व समुन्नत न होता और सम्भव है कि बहुत से लोगों के विधर्मी हो जाने व बना दिये जाने से देश के सामने आज से अधिक सामाजिक व राजनैतिक समस्यायें उपस्थित होतीं। आज भी वेदों के प्रचार प्रसार व महर्षि पतंजलि के योग दर्शन के अनुसार आध्यात्मिक क्रान्ति की आवश्यकता है जिसका आरम्भ महर्षि दयानन्द ने अपने समय में किया था।

संक्षेप में हम यह कहेंगे कि महर्षि दयानन्द ने संसार से अज्ञान, अन्धविश्वास, कुरीतियां, पाखण्ड, सामाजिक भेदभाव मिटाकर सबको समानता का अधिकार देने का अपनी ओर से हर सम्भव प्रयत्न किया। वह इतिहास में ऐसे पहले मनुष्य भारतीय वैदिक धर्मी पण्डित व विद्वान थे जिनके सभी मतों मुख्यतः ईसाई पदाधिकारियों, राज्याधिकारियों एवं मुस्लिम मौलवी एवं विद्वानों आदि से भी मैत्रीपूर्ण व आत्मीय सम्बन्ध थे। उदयपुर, शाहपुरा आदि अनेक रिसायतों के राजा उनके चरणों में गहरा अनुराग व भक्ति रखते थे। उनकी मृत्यु के बाद उनके शिष्यों ने उनकी स्मृति में राष्ट्र स्तरीय गुरूकुल कांगड़ी, दयानन्द ऐग्लों वैदिक स्कूल व कालेज व अनेक पाठशालायें, महिला विद्यालय आदि खोलकर उनके स्वप्न को साकार करने की कोशिश की। देशभक्त श्यामजी कृष्ण वर्म्मा, स्वामी श्रद्धानन्द, लाला लाजपतराय, पं. रामप्रसाद बिस्मिल, भाई परमानन्द आदि ने उनके विचारों से प्रभावित होकर ही देश की आजादी के आन्दोलन में भाग लिया था। उनके अनुयायियों ने अनाथालय, वनिताश्रम खोलकर व छुआछूत सहित समाजिक असमानता दूर करने का उल्लेखनीय कार्य किया। देश व समाज के सुधार व उन्नति में उनका योगदान अविस्मरणीय रहेगा। इन्हीं पंक्तियों के साथ हम इस लेख को विराम देते हैं।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**